



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2018; 4(6): 163-165

© 2018 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 18-09-2018

Accepted: 16-10-2018

डॉ० देव निरंजन झा

पूर्व शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार,
भारत

भारतीय षड्दर्शनों पर वैदिकधर्म का प्रभाव

डॉ० देव निरंजन झा

सारांश:

ऋग्वेद में जगत् की उत्पत्ति, प्रलय आदि से सम्बन्धित वर्णनों को यदि भावी दार्शनिक पृष्ठभूमि कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी, किन्तु यह विचार काव्यमय माध्यम से व्यक्त हुए धार्मिक भाव है। वस्तुतः आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, जीव, जगत्, मोक्ष आदि ऐसे विषय हैं जो स्वरूप परिवर्तन तथा अन्तर के साथ प्रत्येक दर्शन का प्रतिपाद्य विषय रहे हैं। श्वेताश्वतर, कठ, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, माण्डूक्य, प्रश्न आदि उपनिषदों में अधिकांशतः ऐसे विचार हैं, चिन्तन हैं, जिनका अधिष्ठान लेकर षड्दर्शनों के भवन का निर्माण हुआ है। निःसंदेह उपनिषदों से ही चिन्तनों को संगृहीत एवं व्यवस्थित कर षड्दर्शनों का निर्माण महर्षियों ने किया। उपनिषदों में बिखरे हुए चिन्तनसूक्तों को संगृहीत कर अपने सूत्रों की रचना की।

प्रस्तावना:

भारतीय दर्शनगगन में न्याय सांख्य का समान तन्त्र है, इससे सांख्य के पच्चीस तत्त्वों के अतिरिक्त ईश्वर की वैशेषिक, सांख्य-योग मीमांसा तथा वेदान्त नामक नक्षत्र उदित हुए, जो उपनिषद् रूपी आकाश का आधार लिये हुए होने पर भी अपनी स्वतन्त्र गति एवं रीति से विकसित हुए।^[1] इसीलिए ये सभी आस्तिक दर्शन कहे जाते हैं। उपनिषत्कालीन तत्त्वज्ञान का महनीय मन्त्र है 'तत्त्वमसि' महावाक्य। अवान्तर दर्शनों की उत्पत्ति इसी महावाक्य की मीमांसा करने के लिए हुई।

न्यायदर्शन:

न्यायदर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। न्याय वस्तुवादी दर्शन हैं जो पदार्थों के ज्ञान के लिए चार प्रकार के प्रमाणों को प्रस्तुत करता है— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द। पदार्थों के साक्षात् या अपरोक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं, जिसकी उत्पत्ति पदार्थ तथा ज्ञानेन्द्रिय के संयोग से होती है। अनुमान किसी ऐसे लिंग या साधन के ज्ञान पर निर्भर रहता है, जिसका अनुमितवस्तु (साध्य) के साथ एक नियत सम्बन्ध रहता है। संज्ञा (नाम) तथा संज्ञी (नामी) के सम्बन्धज्ञान को उपमान कहते हैं और यह आधारित रहता है सादृश्यज्ञान के ऊपर। आप्त (प्रामाणिक) पुरुषों के कथन से किसी अज्ञात पदार्थ के विषय में जो हमारा ज्ञाता होता है वह 'शब्द' कहलाता है। नैयायिकों के अनुसार इन्ही चारों प्रमाणों के अन्तर्गत इतर प्रमाणों का भी सन्निवेश अभीष्ट है।^[2]

आत्मा को सांसारिक बन्धनों से मुक्त कराना ही न्याय का मुख्य सिद्धान्त है। आत्मा, शरीर, इन्द्रिय तथा मन इनसे भिन्न तथा पृथक् है। शरीर पृथ्वी, जल, तेज आदि भूतों की समष्टि से निर्मित एक भौतिक पदार्थ है। मन-सूक्ष्म, नित्य तथा अणु है। चक्षु, प्राण आदि बहिरिन्द्रिय है, परन्तु मन अन्तरिन्द्रिय (भीतरी इन्द्रिय) है और वह आत्मा के सुख-दुःख के अनुभव उत्पन्न करने का साधन है। जब आत्मा का मन के साथ सम्बन्ध होता है, तब उसमें 'चैतन्य' का सञ्चार होता है। 'चैतन्य' आत्मा का आगन्तुक गुण है जो मन के साथ संयोग होने पर होता है, इसीलिये मुक्त दशा में आत्मा में विद्यमान नहीं रहता। मन के साथ संयोग का नाश होते ही वह नष्ट हो जाता है। आत्मा नित्य, विभु तथा अनेक है। इसके विपरीत मन सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा अणु है। कर्म करने में आत्मा स्वाधीन है। अपने किये गये कर्मों के फल भोगता है। मिथ्या ज्ञान, राग-द्वेष तथा मोह से प्रेरित होने पर नाना प्रवृत्तियों में उलझा रहता है और तत्त्वज्ञान होने पर ही आत्मा अपवर्ग को प्राप्त करता है। अपवर्ग का अर्थ है मुक्ति या मोक्ष। अन्य दार्शनिकों के विपरीत नैयायिकों की दृष्टि में 'अपवर्ग' आनन्दमय नहीं होता।^[3] कारण यह है कि आनन्द या सुख की भावना दुःख के बिना हो ही नहीं सकती। फलतः सुखमयी दशा में भी दुःख की सत्ता विद्यमान रहती है, इसीलिये न्यायदर्शन मोक्ष में दुःख के समान सुख का भी नितान्त अभाव मानता है। आत्मा का आगन्तुक गुण होने के कारण चैतन्य भी मोक्ष दशा में सत्ताहीन हो जाता है। मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है। वह अच्छा या बुरा कर्म कर सकता है और तदनुसार सुख या दुःख भोगता है।

Corresponding Author:

डॉ० देव निरंजन झा

पूर्व शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार,
भारत

परन्तु ईश्वर की दया तथा मार्गदर्शन से मनुष्य अपनी आत्मा तथा विश्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार वह अपने क्लेशों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह न्यायदर्शन का सिद्धान्त है।

वैशेषिकदर्शनः

न्यायदर्शन के साथ अनेक सिद्धान्तों में समानता रखने के कारण 'वैशेषिकदर्शन' को 'समानतन्त्र' के नाम से अभिहित किया जाता है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि को सामने रखकर सत्य की मीमांसा की गई है। न्यायदर्शन का प्रधान लक्ष्य अन्तर्जगत् तथा ज्ञान की मीमांसा है, वैशेषिक का मुख्य तात्पर्य बाह्य जगत् की विस्तृत समीक्षा है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक 'महर्षि कणाद' हैं जिनके सूत्र न्यायसूत्र से भी प्राचीन माने जाते हैं— बौद्धों की वैशेषिकों पर अत्यधिक आस्था तथा श्रद्धा थी। प्राचीन वैशेषिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ये दो ही प्रमाण को स्वीकार करते थे।^[4]

वैशेषिक दर्शन विश्व की समस्त वस्तुओं को सात पदार्थों के अन्तर्गत विभक्त करता है— द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव। ईश्वर तथा मोक्ष के विषय में वैशेषिकों की धारणा दर्शन के समान ही है। वैशेषिक आचार—मीमांसा न्यायदर्शन के सिद्धान्तों से बहुत दूर नहीं है। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन के प्रथम सूत्र में ही धर्म की व्याख्या की है—^[5] 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'

धर्म वही है जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान और मोक्ष की उपलब्धि हो या तत्त्वज्ञानपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति हो। धर्म के साधक तत्त्व दो प्रकार के होते हैं— सामान्य और विशेष। सामान्य कर्मों में अहिंसा, सत्यवचन, अस्तेय आदि की गणना है। विशेष धर्मों में वर्णाश्रम के कर्म सम्मिलित हैं। वैशेषिकों का आग्रह निष्काम कर्मों के ऊपर है। निष्काम कर्म का आचरण तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति करता हुआ मोक्ष की सिद्धि परम्परा करता है। इस प्रकार वैशेषिक आचारमीमांसा की यह क्रमिक श्रृंखला है— निष्काम कर्म सत्त्वशुद्धि—तत्त्वज्ञान का उदय मिथ्याज्ञान की निवृत्ति—मोक्ष प्राप्ति। इस प्रकार मोक्ष के उदय के प्रति तत्त्वज्ञान साक्षात्कारण है, परन्तु निष्काम कर्म परम्पराकरण है। जाति विशेष तथा परमाणु के समीक्षण में वैशेषिकों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का साक्षात्कार होता है। न्याय तथा वैशेषिक के द्वारा मीमांसित तथ्यों को ग्रहण करके ही हम तत्त्वचिन्तन में अग्रसर हो सकते हैं।

सांख्यदर्शनः

सांख्य द्वैतवादी दर्शन है। इसके प्रवर्तक कपिल मुनि माने जाते हैं। सांख्य के मान्य तथ्यों का संकेत उपनिषदों में प्राप्त होता है, विशेषकर कठोपनिषद् तथा श्वेताश्वेतर उपनिषद् में। सांख्य की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कुछ कहना तो सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा। भगवान् कृष्ण ने स्वयं गीता में सांख्य दर्शन की प्रशंसा है तथा इसके प्रवर्तक कपिलमुनि को सिद्धों में श्रेष्ठ बताकर उन्हें अपना ही रूप प्रतिपादित किया है। सांख्यदर्शन की प्रशंसा के संदर्भ में डॉ० उमाशंकर मिश्र का कथन है— 'सांख्यदर्शन वास्तव में मनोवैज्ञानिक दर्शन है। इसके तत्त्व स्थूल नहीं हैं। वे हमारे बौद्धिक जगत् के तत्त्व हैं। इस जगत् में केवल सूक्ष्मतत्त्व ही हैं। उनके सम्बन्ध में विचार भी सूक्ष्म हैं।' ^[6] सत्त्व—रजस्— तमोरूपा त्रिगुणात्मिका 'अविद्या' त्रिगुणातीत आत्मा से पृथक् है, इस प्रकार का ज्ञान जीव को प्राप्त करना है। इसी पृथक्करण को 'विवेकख्याति' या 'विवेक' या 'प्रकृति—पुरुष—विवेक' कहते हैं, इसलिये इसे 'सांख्यदर्शन' कहते हैं। यथा—^[7] 'इमे सत्त्वरजस्तमांसि गुणा मया दृश्याः। अहं तेभ्योऽन्यः। तद्व्यापारसाक्षिभूतो नित्यो गुणविलक्षण आत्मेति चिन्तनम्। एष सांख्यः।' भारत में उत्पन्न यह दर्शन सर्वाधिक सारगर्भित पद्धति का है।^[8]

सांख्य दर्शन के अनुसार 'प्रकृति' सूक्ष्म और स्थूल जगत् की उत्पादिका है। सृष्टि में पदार्थ इसी मूल कारण से उत्पन्न होते हैं और इसी में विलीन हो जाते हैं। इस मूल कारण का अव्यक्त रूप होने से इसे 'अव्यक्त' कहते हैं। प्रधान कारण होने से 'प्रधान' तथा

सर्वोत्पादक होने से 'प्रकृति' कहा जाता है। प्रकृति वह तत्त्व है जिसके द्वारा संसार की समस्त वस्तुएँ विकसित होती हैं। सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का परिणाम है। प्रकृति सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम है। प्रकृति दर्शनार्थ पुरुष पर निर्भर है और पुरुष केवल्यार्थ प्रकृति की अपेक्षा रखता है क्योंकि प्रकृति तथा पुरुष इन दोनों के संसर्ग से ही जगत् का विकास होता है। यथा—^[9]

'पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।

पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संगोगस्तत्कृतः सर्गः।।'

सांख्यदर्शन निरीश्वरवादी है। उपनिषद् तथा पुराणों के युग में भी सांख्य का अस्तित्व था, उस समय वह ईश्वर की सत्ता को मानता था, परन्तु सांख्यसूत्रों के उपदेशों पर आश्रित सांख्य ईश्वर को प्रमाणतः सिद्ध नहीं मानता। जगत् की सृष्टि के लिए प्रकृति स्वयं एकमात्र कारण है। सांख्य मत के कारण तथा परिणाम वस्तुतः अभिन्न होते हैं क्योंकि कारण ही परिणाम के रूप में परिणत हो जाता है। यदि ईश्वर, जगत् का कारण माना गया तो वह भी परिणामी तथा परिवर्तनशील होने लगेगा जो उसके स्वभाव के नितान्त विरुद्ध है। 'सांख्यसूत्र' के 'सांख्य प्रवचन भाष्य' में उनका स्पष्ट मत है कि ईश्वर प्रकृति का स्रष्टा नहीं है, प्रत्युत् द्रष्टा मात्र है।

योगदर्शनः

योगदर्शन के प्रणेता पतञ्जलि माने जाते हैं। इन्हीं के नाम के आधार पर इस दर्शन को 'पातञ्जलदर्शन' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। योग का अर्थ समाधि है। यथा—^[10] 'योगः समाधिः।' इसी को चित्तवृत्ति का निरोध भी कहते हैं। यथा—^[11] 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' योग के मतानुसार मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए विवेक ज्ञान को ही पर्याप्त नहीं माना गया है, बल्कि योगाभ्यास पर भी बल दिया गया है। योगाभ्यास पर बल देना इस दर्शन की निजी विशिष्टता है। इस प्रकार योगदर्शन का व्यावहारिक पक्ष अत्यधिक प्रधान है।

योगदर्शन सांख्य की भांति द्वैतवादी है। सांख्य के तत्त्व—शास्त्र को वह पूर्णतः स्वीकार करता है। उसमें यह केवल 'ईश्वर' को जोड़ देता है, इसलिये योग का 'सेश्वर—सांख्य' कहा जाता है। योग शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है।^[12] साधारण रूप से इसका अर्थ 'क्रियाविधि'^[13] हो सकता है। कभी—कभी इसका प्रयोग संयोजित करने के लिए भी होता है।^[14] पतञ्जलिकृत योगदर्शन में योग का अर्थ जुड़ना (एकत्व) नहीं, प्रत्युत् केवल प्रयत्नमात्र है। पतञ्जलि के अनुसार मानवीय प्रकृति (भौतिक तथा आत्मिक) के भिन्न—भिन्न तत्त्वों के नियन्त्रण द्वारा पूर्णता प्राप्ति के लिये किया गया विधिपूर्वक प्रयत्न ही योग है।^[15]

योगसूत्र के आरम्भ में ही योग का 'लक्षण—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' बताया गया है। चित्त की प्रवृत्तियाँ पाँच हैं— प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। योग के आठ अंग हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों के निरन्तर, अभ्यास से चित्तवृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं, तदुपरान्त चित्त के एकाग्र होने पर कैवल्य की अनुभूति होती है।

मीमांसादर्शनः

मीमांसा तथा वेदान्तदर्शनों में वेद के ही सिद्धान्तों का विवेचन है। वेद के दो काण्ड हैं— कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड, जिनमें संहिता तथा ब्राह्मणों में प्रतिपादित होने के कारण कर्मकाण्ड का निर्देश प्रथमतः किया गया है। उपनिषदों में ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन है जो कर्मकाण्ड के अनन्तर आता है। कर्मकाण्ड का प्रतिपादक होने के कारण ही यह दर्शन 'कर्ममीमांसा', 'पूर्वमीमांसा' या केवल 'मीमांसा' के नाम से प्रख्यात है। मीमांसादर्शन के दो प्रधान विषय हैं—

1. वैदिक कर्मकाण्ड की विधियों में जो परस्पर विरोध दृष्टिगत होते हैं उनके परिहार के लिये व्याख्यापद्धति का आविष्कार करना।
2. कर्मकाण्ड के आधारभूत सिद्धान्तों को युक्ति तथा तर्क के द्वारा व्यवस्थित तथा प्रतिष्ठित करना।

मीमांसादर्शन में दोनों विषयों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। कर्मकाण्ड के कुछ मान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन मीमांसा दर्शन करता है।

कर्मकाण्ड का आधार वेद है। मीमांसा के अनुसार धर्म का लक्षण है—^[16] 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।' अर्थात् 'चोदना' के द्वारा लक्षित अर्थ धर्म कहलाता है। 'चोदना' का अर्थ है वेद का विधिवाक्य। अतएव वेद के विधिवाक्यों के द्वारा जिस अभिलषित वस्तु का प्रतिपादन किया जाता है वही 'धर्म' है। कर्ममीमांसा का मुख्य उद्देश्य यह है कि प्राणी वेद के द्वारा प्रतिपादित अभीष्टसाधक कार्यों में लगे और अपना वास्तविक कल्याणसम्पादन करे। यज्ञ-यागादि में किसी देवताविशेष (जैसे- इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि) को लक्ष्य करके आहुति दी जाती है। मीमांसा के मत में देवता सम्प्रदानकारक सूचक पदमात्र हैं। इससे बढ़कर उनकी स्थिति नहीं है। देवता मन्त्रात्मक होते हैं और देवताओं की सत्ता उन मन्त्रों को छोड़कर अलग नहीं होती जिसके द्वारा उनके लिये होम का विधान किया जाता है।^[17] वेद प्रतिपादित कर्म तीन प्रकार के होते हैं— काम्य, निषिद्ध और नित्य। इन कर्मों में काम्य तथा नित्य का सम्पादन करना हमारा परम कर्तव्य है तथा उसी प्रकार निषिद्ध का वर्जन भी।

इस प्रकार वेदविहित कर्मों का अनुष्ठान तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग धर्म कहलाता है। मीमांसा का मान्य सिद्धान्त यह है कि वेदविहित कर्मों का अनुष्ठान किसी फल की आशा से कभी न करना चाहिए, प्रत्युत् उन्हें वेद का आदेश समझकर ही करना चाहिए। ऋषियों के प्रातिभ चक्षु के द्वारा दृष्ट वैदिकमन्त्रों में प्रतिपादित धर्म हमारे परम कल्याण के लिये ही होता है। अतः निष्काम भावना से कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए मीमांसा का यही उद्देश्य है। नित्य कर्मों के निष्काम आचरण से पूर्वार्जित कर्मों का नाश हो जाता है एवं देहान्त होने पर मुक्ति मिलती है। प्राचीन मीमांसा के अनुसार स्वर्ग तथा मुक्ति में अन्तर नहीं है। उसके अनुसार स्वर्ग या विशुद्ध सुख की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ या मोक्ष है, परन्तु आगे चलकर मोक्ष का पार्थक्य स्वर्ग से कर दिया गया है और मोक्ष से केवल जन्मनाश तथा दुःख का अन्त समझा जाने लगा है।

वेदान्तदर्शन:

भारत देश में 'वेदान्त' धर्म में ओतप्रोत अन्य सभी विचार पद्धतियों की अपेक्षा अधिक जीवित रूप में विद्यमान है।

वेदान्तशब्द का योगिक अर्थ 'वेद का अन्त' अथवा वे सिद्धान्त जो वेदों के अन्तिम अध्यायों में प्रतिपादित किए गए हैं, और ये ही उपनिषदें हैं। उपनिषदों के विचार भी वही हैं जो वेद का अन्तिम लक्ष्य अथवा वेदों का सार हैं।^[18] वेदान्तसूत्र का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र भी है, क्योंकि यह ब्रह्म सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या है और शारीरकसूत्र भी इसी का एक अन्य नाम है इसीलिए कि यह निरुपाधिक आत्मा की अभिव्यक्ति के विषय में प्रतिपादन करता है। वेदान्त के मुख्य छः पक्ष हैं, जिनके प्रतिपादन की एक दीर्घ परम्परा आज भी प्रचलित है। इनकी अन्वर्थक संज्ञाएं हैं— अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत, अचिंत्यभेदाभेद। ब्रह्म और जीव के परस्पर सम्बन्ध का पार्थक्य ही इन विभिन्न पक्षों के नामकरण का हेतु है।

सन्दर्भ-सूची:

1. वेदान्तसार, भूमिका, पृ.- 2-3
2. भारतीय धर्म और दर्शन का अनुशीलन, पृ.- 51
3. भारतीय धर्म और दर्शन का अनुशीलन, पृ.- 52

4. भारतीय धर्म और दर्शन का अनुशीलन, पृ. 52-53
5. वैशेषिक सूत्र- 1.1.2
6. भारतीय दर्शन, पृ.- 270
7. श्रीमद्भगवद्गीता, शाङ्करभाष्य- 13.24
8. सांख्यप्रवचनभाष्य, भूमिका, पृ.- 2
9. सांख्यकारिका- 21
10. योगभाष्य- 1.1
11. पातञ्जलयोगसूत्र- 1.2
12. भारतीय दर्शन, भाग-1, पृ.- 434-435
13. श्रीमद्भगवद्गीता- 3.3
14. भारतीय दर्शन, भाग-1, पृ.- 435
15. भारतीय दर्शन, भाग- 2, पृ.- 289
16. मीमांसासूत्र- 1.1.2
17. भारतीय धर्म और दर्शन का अनुशीलन, पृ.- 64
18. भारतीय दर्शन, भाग- 2, पृ.- 366